संपादकीय

दुग्ध क्रांति के जनक तथा सहकारी आंदोलन के महान प्रस्तावक डॉ० वर्गीस कुरियन का 9 सितंबर, 2012 को निधन हो गया। जब उन्होंने गुजरात में अपना कार्य शुरू किया था तब भारत दूध के आयात पर निर्भर था और आज दूध उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर है। उस समय प्रति दिन प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता 117 ग्राम थी जो कि आज बढ़कर 220 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन हो गई है। भारत भी सबसे बड़े दुग्ध उत्पादक देशों में से एक है।

भारत कृषक समाज ने 'खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेशः क्या यह भारतीय किसानों के लिए लाभदायक है?' विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया। यह आयोजन इण्डिया इन्टरनैशनल सैंटर, नई दिल्ली में 21 अगस्त, 2012 को नई दिल्ली में किया गया और इसमें भारतीय किसानों के लिए विदेशी सीधा निवेश विषय पर विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ समूह ने विचार व्यक्त किए। इनमें नीति निर्माता, विचारक, अनुसंधान संस्थाएं, राजनीतिक पार्टियां, व्यापारियों की संस्था, व्यापारिक चैम्बर, कृषि उत्पाद विपणन संस्थाओं और कारपोरेट क्षेत्र शामिल हैं।

इस सम्मेलन में भाग लेने वाले वक्ताओं में प्रो. अर्पिता मुखर्जी, इण्डियन काउंसिल फॉर रिसर्च एण्ड इण्टरनैशनल इकोनोमिक रिलेशन्स; श्री अरविंद सिंघल, अध्यक्ष, टैक्नोपाक एडवाईजर्स; श्री प्रवीण खण्डेलवाल, महासचिव, कन्फैडरेशन ऑफ आल इंडिया ट्रेडर्स; श्री धमेन्द्र कुमार, निदेशक, इण्डिया एफडीआई वाच; श्री राजेन्द्र कुमार शर्मा, अध्यक्ष, एग्रीकल्चरल प्रोडक्टस मार्केटिंग कमेटी, आजादपुर; श्री एस.के. शर्मा, सह–अध्यक्ष, रीजनल कमेटी आन फूड एण्ड एग्रीकल्चर, सीआईआई (नोर्थन रीजन); श्री पी. मुरलीधर राव, राष्ट्रीय सचिव, भारतीय जनता पार्टी; निरूपमा सुन्दराजन, अपर निदेशक, फिक्की; श्री मोहन गुरूस्वामी, अध्यक्ष और संस्थापक सैन्टर फॉर पॉलिसी अल्टरनेटिक्स, नई दिल्ली शामिल थे। इस कार्यक्रम का संचालन वरिष्ठ पत्रकार श्री परंजोय गुहा ठाकुराता ने किया।

खुदरा में एफडीआई का कोई मुद्दा नहीं है किन्तु कृषि सुधार प्रमुख मुद्दा है

श्री अरविंद सिंघल – अध्यक्ष, टैक्नोपाक एडवाईजर्स

विदेशी सीधा निवेश पर ऐतिहासिक तथ्यों को देखा जाए तो वर्ष 1990 में इस देश में विदेशी सीधे निवेश पर कभी कोई प्रतिबंध नहीं था। यह एक मंत्री थे जो किसी एक घराने या संस्था से विचलित थे उन्होंने इस वाद–विवाद को आरंभ करते हुए प्रशासनिक विजय प्राप्त की। एक प्रशासनिक अधिसूचना के रूप में खुदरा में विदेशी सीधे निवेश के लिए राज्य सरकार या संसद के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं थी। वास्तव में इस मुद्दे पर 1960 के दशक, 1970, 1980 और 1990 के दशक में भी कभी विचार विमर्श नहीं हुआ था। भारत में पहला विदेशी खुदरा का कारोबार जर्मनी से आया था जिसमें एस्कोर्टस् के साथ कारोबार भारत में आरंभ किया था किन्तु वह जल्दी ही भाग गया। खुदरा में विदेशी सीधे निवेश के वाद–विवाद का किस्सा वास्तव में कोई मुद्दा ही नहीं है जिस पर आवश्यकता से ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है।

आंकड़ों पर विचार करने के लिए, वर्ष 2001 में भारत का सकल घरेलू उत्पाद 450 बिलियन अमेरिकी डॉलर था जो आज के विनिमय दर के अनुसार लगाया गया है। इसमें से व्यापारिक खुदरा उपभोग के अन्तर्गत होकर और स्थानीय पंसारियों के स्टारे शामिल हैं और इन जैसे और विक्रेता शामिल हैं जिनका कारोबार 120 बिलियन अमेरिकी डॉलर बनता है। वर्ष 2011 में यह लगभग 1840 बिलियन अमेरिकी डॉलर था और 470 बिलियन अमेरिकी डॉलर का खुदरा कन्जप्शन था। वर्ष 2021 में यदि वृद्धि दर 5 और 6 प्रतिशत के बीच रहती है तो भारत का सकल घरेलू उत्पाद 3 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर हो सकता है और अतिरिक्त खुदरा कन्जप्शन 350 बिलियन अमेरिकी डॉलर की हो सकती है।

इन सभी में संगठित खुदरा का भाव क्या है ? वर्ष 2001 में यह केवल 2.4 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। वर्ष 2011 में टाटा, बिरला, अम्बानी, गोयनका और विदेशी परचूनियों को इक्ट्ठा रखने पर संगठित परचून का भाग केवल 25 बिलियन अमेरिकी डॉलर था और उसमें शून्य लाभ था। इस प्रकार जब परचून कन्जप्शन 350 बिलियन अमेरिकी डॉलर पिछले 10 वर्ष में बढ़ चुकी है तो आधुनिक परचून में वृद्धि 22 बिलियन अमेरिकी डॉलर और 24 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बीच ही है। इस प्रकार 350 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वृद्धि कहां से आई यदि यह सड़क के किनारे बैठने वाले विक्रेताओं या पंसारी स्टोरों की नहीं थी। आधुनिक परचून के कारण कितने पंसारी के स्टोर बंद हुए हैं? वास्तव में पिछले कई वर्षों से शहरों में हाट्स का आयोजन नहीं किया जा रहा था किन्तु अब यह दिल्ली जैसे शहरों में भी आ चुके हैं क्योंकि उपभोग की मात्रा असाधारण रूप से बढ़ी है।

विदेशी सीधे निवेश का बेरोजगारी के भय संबंधी प्रश्न को संबोधित करने के लिए, क्योंकि यह परचून में विदेशी सीधे निवेश के बारे में संसद में प्रकट की गई चिंताओं में से एक है – 20 मिलियन और 50 मिलियन लोगों के बीच, जिनके लिए सरकार रोजगार उपलब्ध नहीं करा पाई उन्होंने पिछले 10 वर्ष में कारोबारी का रूप ले लिया है।

अगले 10 वर्षों में आधुनिक परचून अधिकतम 80 बिलियन अमरीकी डॉलर तक ही पहुंच पाएगा क्योंकि बड़े शहरों में इसके अच्छे अवसर नहीं हैं। वालमार्ट और कारफोर चिंतित हैं क्योंकि शहरी स्थान लेना दिन प्रतिदिन कठिन

होता जा रहा है। 200 और 400 रू० प्रतिवर्ग फुट के बीच कोई भी परचूनिया लाभ अर्जित नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त बिजली, कामगार और अन्य वस्तुओं की लागत है जिनसे आधुनिक परचून का कार्य कठिन हो रहा है। वर्तमान में लगभग 24 बिलियन अमरीकी डॉलर हैं, 55 बिलियन अमरीकी डॉलर की अतिरिक्त वृद्धि 350 बिलियन अमरीकी डॉलर के लिए होगी जो परचून उपभोग में समग्र वृद्धि होगी। इस बात पर भरोसा किया जा सकता है कि भारत की वर्तमान नीतियों के अन्तर्गत आधुनिक परचून का कारोबार बढ़ नहीं सकता।

इस परिदृश्य में किसान कहां खड़े होते हैं? 470 बिलियन अमरीकी डॉलर के परचून कन्जप्शन में से 325 बिलियन अमरीकी डॉलर से अधिक आहार पर खर्च हुए हैं। इसका अर्थ है कि भारतीय व्यापार का 60 प्रतिशत से अधिक भाग आहार पर खर्च हो रहा है जबकि विकसित देशों द्वारा केवल 10 प्रतिशत ही आहार पर खर्च होता है। इसमें से 325 बिलियन अमरीकी डॉलर का आधुनिक परचून का भाग आहार में 2 बिलियन अमरीकी डॉलर से भी कम बैठता है। इससे किसानों पर कोई फर्क नहीं पड़ता है, न तो सकारात्मक न ही नकारात्मक जिसका अर्थ है कि कृषि के लिए विदेशी सीधा निवेश कोई मुद्दा नहीं है।

हमारे देश में बड़े–बड़े उद्योगपतियों द्वारा भरस्क प्रयास करने के बाद भी आधुनिक परचून का कार्य 50 नगरों से अधिक नहीं पहुंचा है केवल वस्त्र और जूता स्टोर को छोड़कर। यदि अगले 10 वर्ष में यह 100 नगरों में भी पहुंच जाए तो अधिकतम 160 मिलियन लोगों तक ही यह पहुंच पाएगा। इसमें से भी 20 प्रतिशत या 25 प्रतिशत से अधिक लोग इन आधुनिक दुकानों पर नहीं जाएंगे। बाकी लोग स्लम्स में रहते हैं और वे इन स्टोरों पर जाना पसंद नहीं करेंगे। भारत 30 मिलियन और 40 मिलियन जनसंख्या या 2 प्रतिशत जनसंख्या ही इन आधुनिक स्टोरों से खरीदारी पर निर्भर रह सकती है। इस स्थिति में आधुनिक दुकानों का पारम्परिक परचून की दुकानों पर पड़ने वाले प्रभाव की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। भारत को वास्तव में कृषि में सुधारों की आवश्यकता है और मण्डियों से और चुंगी शुल्क से मुक्ति दिलाने की आवश्यकता है क्योंकि इनके कारण बहुत सा उत्पाद नष्ट हो जाता है क्योंकि ट्रकों को क्लीयरेंस लेने के लिए इन बाधाओं से गुजरना पड़ता है।

बड़े–बड़े परचूनिए भी बिचौलिए ही हैं

श्री धर्मेन्द्र कुमार – निदेशक, इण्डिया एफडीआई वाच

खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश विषय पर लगभग एक दशक पुराना विवाद है। अच्छी बात यह है कि अब यह परचूनियों और व्यापारियों के स्थान पर किसानों की ओर शिफ्ट हो गया है किन्तु व्यापक सन्दर्भ में। कोई भी आश्वस्त नहीं है कि किन किसानों की बात की जा रही है – वे किसान जो, वालमार्ट और अन्य विदेशी परचूनियों के या वे लोग जो अपने उत्पाद का निर्यात करते हैं, इनकी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उत्पाद की आपूर्ति करेंगे। विश्व व्यापार संगठन जिसके मानदण्ड भारत पर 2 दशक पहले थोपे गए थे, इस संबंध में कहा जा सकता है कि क्या वे हमारे किसानों के लिए लाभदायक सिद्ध हुए ? कृषि उत्पादों का निर्यात इन वर्षों में बढ़ा है किन्तु आयात भी बढ़ा है। इस प्रकार भारतीय किसानों के लिए कोई सामाजिक उपलब्धि नहीं रही है।

प्रचून में विदेशी सीधे निवेश से समाज और अर्थव्यवस्था दोनों पर प्रभाव पड़ता है, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक, यह इस बात पर निर्भर होता है कि नियमों को कैसे क्रियान्वित किया जाता है। पिछले 65 वर्षों में देश का खाद्यान्न उत्पादन 4 गुना बढ़ा है किन्तु भारत की जनसंख्या भी 3 गुना बढ़ चुकी है। यद्यपि भारत में अनाज अधिक है फिर भी भारत का प्रत्येक चौथा बच्चा कुपोषण का शिकार है। चीन भी वर्ष 1990 में ज बवह

अपने निर्माण क्षेत्र को बढ़ा रहा था तो उसके सामने प्रश्न था कि चीन के लिए अनाज कहां से उत्पन्न होगा। चीन सरकार ने कहा कि लोग अपने आप अपना पालन करेंगे और उसने कृषि सुधारों की एक संतुलित नीति अपनाई, कृषि में लगी हुई अधिक जनसंख्या को निकालकर इसे निर्माण के क्षेत्र में लगा दिया। भारत के पास अभी भी यह उत्तर नहीं है कि भारत को कौन खिलाएगा।

देश में वित्तीय संकट है और किसान निराश हैं। अतः सप्लाई चेन में कोई नई नीति या आशोधन को किसानों की आवश्यकता के अनुसार बनाया जाए, ये किसान ही भारत को अनाज उपलब्ध कराएंगे। यदि कोई नीति किसानों की सहायता नहीं करती है तो इसका पूरे देश पर प्रभाव पड़ेगा। जो लोग ये कहते हैं कि बड़ी–बड़ी परचून की दुकानों से छोटे–छोटे दुकानदारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, वे झूठ बोलते हैं। दोनों एक साथ नहीं रह सकते क्योंकि उसी स्तर पर एक ही स्थान में दोनों को कारोबार करना होगा और देहात और नगरों में अलग–अलग कार्य नहीं करना होगा।

जब किसानों की बात होती है तो बड़े–बड़े परचूनिए रखते हैं कि वे किसानों का उपयोग करेंगे और ठेके पर खेती आरंभ कराएंगे जिसके कुछ लाभ तो कुछ हानियां भी हैं। यह सच है कि कुछ किसानों को ठेके की खेती से लाभ हुआ है किन्तु इनका अनुपात बहुत ही कम रहा है। ठेके पर खेती में असफलता के कई और भी किस्से हैं। पंजाब में 50 प्रतिशत किसानों ने ठेके पर खेती करने से मना कर दिया। लोग छोटी–छोटी कृषि भूमि पर ही अपने हिसाब से खेती करना चाहते हैं।

सरकार कृषि आपूर्ति चेन के रिसट्रक्चर करने से बच नहीं सकती और उसे सुनिश्चित करना होगा कि कृषि उत्पाद विपणन समितियों से बेहतर समन्वय रहे, और आधारभूत सुविधाएं सृजित करे और सहकारी कृषि आरंभ करे तथा विपणन उत्पादों के लिए किसानों की सहकारी संस्थाओं से सहायता ली जाए। कृषि उत्पाद विपणन समितियों और बिचौलियों से दूर रहना कोई विकल्प नहीं है। वास्तव में उन्हें इन बड़े–बड़े स्टोरों से प्रतिस्पर्धा के लिए बने रहना चाहिए क्योंकि बिचौलियों की लम्बी चेन में वे खुद भी बिचौलिए हैं।

अमरीकी लोगों के लिए लाभ और चीनी लोगों के लिए नौकरियां

श्री मोहन गुरूस्वामी – अध्यक्ष और संस्थापक, सैंटर फॉर पोलिसी अल्टरनेटिव, नई दिल्ली

विदेशी निवेश तब तक लाभदायक है जब तक यह रोजगार पैदा करे, विकास में सहभागी बने और वस्तुओं के मूल्य में भी उचित वृद्धि हो। भारत में ऑटोमोबाईल क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियां जैसे हुंडई, फोर्ड और होंडा जैसी कम्पनियों ने किया है। इस क्षेत्र में इतना विकास तब तक नहीं हो सकता था जब तक विदेशी निवेदश और तकनीक नहीं अपनाई जाती। किन्तु यही वे बिन्दु हैं जो परचून में विदेशी सीधे निवेश के विरूद्ध जाते हैं। विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के देशों के अध्ययन से यह पता चलता है कि बड़े–बड़े परचूनियों ने किसी क्षेत्र विशेष में रोजगार कम कर दिया है और एकाधिकार के कारण उत्पादक भी कम हो गए। बड़ी मात्रा में खरीद करने की उनकी पद्धति से उत्पादक मूल्य नीचे चले गए। इसका उदाहरण कॉफी उद्योग है।

एक दशक पहले कॉफी उत्पादकों ने विश्व बाजार के 30 बिलियन अमरीकी डॉलर में से 10 बिलियन अमरीकी डॉलर अर्जित किए थे। किन्तु अब वे 60 बिलियन अमरीकी डॉलर के बाजार में से 6 बिलियन अमरीकी डॉलर से भी कम कमा रहे हैं। घाना के कोकोवा किसान केवल एक विशेष प्रकार की दूध की चॉकलेट बार के मूल्य का

3.9 प्रतिशत अर्जित करते हैं जबकि इसमें परचून का लाभ लगभग 34 प्रतिशत है। अध्ययन के अनुसार बहुराष्ट्रीय कम्पनियां जो प्रसंसाधन, विपणन और परचून कारोबार पर नियंत्रण रखती हैं, वे 80 निर्धन देशों के उत्पादकों के साथ कारोबार करती हैं और ऐसी नीतियां/नियम बनाती हैं जो उत्पादकों के पक्ष में कभी नहीं होते।

जहां तक रोजगार का संबंध है, योजना आयोग के आंकड़े दर्शाते हैं कि इस देश में 50 मिलियन लोग परचून के क्षेत्र में हैं। इसका अर्थ है कि यह क्षेत्र लगभग 200 मिलियन लोगों की सहायता करता है। कृषि और निर्माण क्षेत्रों में अवसर कम देने के कारण थोड़ी बहुत पूंजी से छोटी दुकान या स्टोर खोलने के लिए लोगों को यह निर्णय करना ही पड़ता है। जब कोई वातानुकूलित दुकान से कुछ खरीदता है तो वह सोचेगा कि इन लोगों का रोजगार पर कितना प्रभाव पड़ेगा। अमरीका को भी इसी प्रकार का अनुभव हुआ था।

पैनसिलवेनिया राज्य विश्व विद्यालय द्वारा वर्ष 2004 में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि जिन देशों में वालमार्ट स्टोर थे वे और निर्धन हो गए क्योंकि अधिक आय प्राप्त करने वाले श्रमिक अपने परिवार द्वारा किए जा रहे छोटे से कारोबार पर निर्भर हो गए थे। यह एक न्यूट्रान बम जैसा है जब बड़े–बड़े स्टोर खुलते हैं तो सब कुछ समाप्त हो जाता है। यही भारत में होने जा रहा है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति वातानुकूलित शोरूम में जाना चाहेगा और सामान की बग्गी के साथ खरीदारी पसंद करते हैं और वे बदबूदार पंसारी की दुकानदारों से मोलभाव करने से भी बच जाते हैं।

वालमार्ट के अध्यक्ष एस.राबसन वाल्टर्स 6 नवम्बर, 2009 को निजी दौरे पर भारत में आए थे किन्तु प्रधानमंत्री से नहीं मिल पाए। 9 नवम्बर को वाणिज्य मंत्री, आनंद शर्मा ने घोषणा की कि सरकार उनके इस दौरे के कारण परचून की नीति में कोई फेरबदल नहीं करेगी और सिंगल ब्रांड़ रिटेल में विदेशी सीधा निवेश ही काफी है जो पहले था। किन्तु 24 नवम्बर को सरकार ने घोषणा की कि सिंगल ब्रांड परचून में 51 प्रतिशत विदेशी सीधा निवेश की अनुमति दी जाएगी। यह दर्शाता हे कि बड़े–बड़े उद्योगपति भारत को कैसे प्रभावित करते हैं और वे इस देश के विचारकों और निर्णय लेने वालों को कैसे प्रभावित करते हैं। अमरीका में वालमार्ट द्वारा दायर लोबिंग डिस्कलोजर रिपोर्ट के अनुसार उन्होंने 2 वर्षों में भारत में लोबिंग करने के लिए 60 करोड़ रू० खर्च किए। कोई नहीं जानता कि यह राशि किसने प्राप्त की।

यह कहा जाता है कि चिप्स के पैकेट का मूल्य 10 रू० है, किसानों को 2 रू० प्रति किलोग्राम आलू बेचना पड़ता है, इस पर कहा जाता है कि विदेशी सीधे निवेश से उनके आलू के भाव बढ़ेंगे। वे यह महसूस नहीं करते हैं कि आलू के पैकेट में भरी गई कच्ची सामग्री बिक्री मूल्य का केवल 12.5 प्रतिशत है अर्थात् 1.25 रू०। बाकी सभी लागत परचूनिए और वितरक का लाभ, बिक्री कर, सीमा शुल्क, पैकिंग लागत और इस प्रकार के खर्चे में जाता है। यही बात जैम और अचार जैसे अन्य उत्पादों पर लागू होती है।

फिनलैंड में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि स्टेपल, राई ब्रेड की लागत बढ़ चुकी है जबकि इसकी कच्ची सामग्री जैसे राई का आटा और मैदे का भाव नीचे आया है। यह नोट किया जाए कि फिनलैंड वह देश है जिसकी उच्चतम प्रति व्यक्ति आय है और जहां पर बड़े–बड़े परचूनियों के स्टोर हैं।

यह भी प्रचार किया जाता है कि बड़े–बड़े परचूनिए आहार की बर्बादी को कम करेंगे जबकि इसका कोई साक्ष्य नहीं दिया जाता। आहार और कृषि संघ के एक अध्ययन से पता चलता है कि औधोगिक देशों में भी अनाज की

उतनी ही बर्बादी होती है जितनी विकासशील देशों में। यूरोप में 280 किलोग्राम प्रति व्यक्ति आहार की हानि है, उत्तरी अमरीका में 295 किलोग्राम की क्षति है, औद्योगिक एशिया में लगभग 240 किलोग्राम और उप सहारा अफ्रीका देशों में और दक्षिण और दक्षिण–पूर्वी एशिया में यह केवल क्रमशः 160 किलोग्राम और 125 किलोग्राम है। यह कहना ठीक नहीं है कि विश्व से परचूनिए आएंगे और आहार की बर्बादी रूक जाएगी। आंकड़ों से पता चलता है कि विकासशील देशों में फसलोपरांत और प्रसंसाधन स्तरों पर 40 प्रतिशत आहार की हानि होती है तो विकसित देशों में यह हानि रिटेल और कन्जूमर स्तर पर होती है। वालमार्ट को परामर्श दिया जाना चाहिए कि वे क्षति रोकने के लिए अमरीका में कारोबार बढ़ाएं न कि भारत में।

वालमार्ट के कार्यों की प्रकृति को समझने के लिए यह जान लेना चाहिए कि वर्ष 2010 में इसके कुल 420 बीलियन अमरीकी डॉलर के कारोबार में 70 प्रतिशत कारोबार चीनी वस्तुओं का था। चीनी वस्तुओं के सबसे बड़े निर्यातकों में से एक वालमार्ट ने 60 बीलियन अमरीकी डॉलर की वस्तुओं का निर्यात केवल अमरीका को किया। चीनी श्रमिकों को इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। रिपोर्ट यह है कि एक जोड़ी जूता बनाने के लिए फैक्ट्री के मजदूर को तियानजिन में 1.30 अमरीकी डॉलर दिया जाता है जो कि अमरीकी रिटेल मूल्य का 2.6 प्रतिशत है।

वास्तव में भारत को अपने चीन के साथ व्यापारिक घाटे के बारे में चिंतित होना चाहिए। वालमार्ट के बिना भी भारतीय एसएमईज विभिन्न क्षेत्रों में चीनी आयात से आहत हैं – इसका उदाहरण यह है कि वर्तमान में भारत में कोई लाईट फिटिंग या खिलौना उद्योग नहीं बचा है। कोई भी सोच सकता है कि वालमार्ट की पाईपलाईन लुधियाना और तिरूपुर में हौजरी और ऊन की वस्तुओं के निर्माताओं का क्या करेगी। चीन भारतीय व्यापार के लिए एक बड़ा खतरा है। तब क्या योजना बनाई जा रही है ? रिटेल क्षेत्र में क्रांति लाई जाए या भारतीयों से रिटेल में क्रांति लाने के लिए कहा जाए ?

यदि परचून में विदेशी सीधे निवेश को लाया जाता है तो न्यूनतम 2 नीति बचाव अपनाने चाहिए। पहला सरकार को बड़े–बड़े रिटेलर से कहना चाहिए कि वे विदेशी मुद्रा को निष्क्रिय (न्यूट्रल) रखेंगे – वे उतना ही निर्यात करेंगे जितना आयात भी करें। दूसरे बड़े–बड़े रिटेलर्स को नगर सीमा और सैटेलाई नगरों से बाहर भी स्थापित किया जाना चाहिए। इससे ग्रामीण अव्यवस्था में सुधार होगा और लोग कम खर्चे के घरों में रहना पसन्द करेंगे न कि बड़े–बड़े शहरों के खर्चीले घरों में। तीसरे यदि रिटेल में विदेशी सीधे निवेश की अनुमति दी जाती है तो निवेशकों को 100 प्रतिशत स्वामित्व की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि वे अपनी पूंजी और ऋण से कारोबार कर सकें।

अन्त में वालमार्ट की तुलना निक रोबिंस से की जा सकती है जिन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी के बारे में लिखा था कि 'चेन के दोनों सिरों पर नियंत्रण करने से कम्पनी सस्ता ही खरीद सकती है और महंगा बेच सकती है'। इस सन्दर्भ में अर्थ यह हुआ कि अमरीकियों को लाभ मिलेगा और चीनियों को रोजगार।